Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue No. XI, July-2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का अध्ययन

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue No. XI, July-2013, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का अध्ययन

Rajbir Singh

----------X----------

शिक्षा का दर्शन एवं धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय शिक्षा प्राचीनकाल से ही दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों से जुड़ी रही है। संसार की परिस्थितियों में आए परिवर्तन के परिणामस्वरूप दार्शनिक विचारधाराओं में भी परिवर्तन होता रहता है और इसी के अनुसार ही शिक्षा व्यवस्था भी परिवर्तित होती रहती है। सत्य तो यह है कि दर्शन का व्यावहारिक रूप शिक्षा है और शिक्षा का सैद्धान्तिक रूप दर्शन। वह दर्शन, दर्शन नहीं है जिसका शिक्षा पर प्रभाव न हो और वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है, जिसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि न हो। वास्तविक दर्शन वह है जिसमें युवकों को जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण को अपनाने हेतु प्रेरित करने और सम्पूर्ण समाज को शिक्षा के उचित विचारों को ग्रहण कराने की शक्ति होती है, चाहे उस दर्शन के उद्देश्य या विशेषताएँ कुछ भी क्यों न हों। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों से जुड़ी रही है। राजनीति का प्रभाव शिक्षा पर वर्तमान युग में स्वतन्त्राता के उपरांत पड़ने लगा है। पिफर भी भारतीय शिक्षा प्राचीनकाल के दार्शनिक विचारों से अब भी अति घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। वैदिक कालीन शिक्षा और बौद्ध कालीन शिक्षा का प्रभाव निरन्तर चला आ रहा है। शिक्षा शास्त्रा के सभी विषयों तथा कार्यों में इन दार्शनिक विचारों का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के सभी विषयों एवं पाठ्यक्रमों पर इसका प्रभाव पाया जाता है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था एवं बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था पर अलग–अलग अनेकों विस्तृत अध्ययन हुए हैं किन्तु बौद्ध दर्शन का प्राचीन भारतीय शिक्षा पर प्रभाव एवं वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता की दृष्टि से छिटपुट तथा आंशिक रूप से ही कार्य हुआ। प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण सभ्याताआ में एक है। इस सभ्यता के समुचित ज्ञान के लिए हमें इसकी शिक्षा पद्धति का अध्ययन करना आवश्यक है जिसने इस सभ्यता को चार हजार वर्षों से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा, उसका प्रचार–प्रसार किया तथा उसमें संशोधन किया। प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा को अत्याधिक महत्त्व प्रदान किया। भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधिवत निर्वाह के लिए शिक्षा की महत्ती आवश्यकता को सदैव स्वीकार किया गया। वैदिक युग से ही इसे प्रकाश का स्रोत माना गया है जो मानव–जीवन के विभिन्न क्षेत्राों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा–निर्देश देता है। प्राचीन कालीन शिक्षा का तात्पर्य उस युग से है जब यहाँ की सभ्यता अपने आदि रूप में पायी जाती रही। इतिहासकारों ने इसे पूर्व वैदिक काल कहा है जो ई. पू. 3000 वर्ष के लगभग था। तदुपरांत वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल आया। इसका प्रारम्भ ई.पू. 3000 वर्ष हुआ और यह काल लगभग ई. पू. 1000 वर्ष तक रहा। सुविधा के विचार से यह काल खण्ड अब वैदिक काल के नाम से पुकारा जाता है।

वैदिक काल में शिक्षा की पूरी व्यवस्था थी। इस काल के लोग ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्रा कहते थे। इस काल में शिक्षा का तात्पर्य था आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति। शिक्षा का प्रथम उद्देश्य मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करना था। 'सा विद्या या विमुक्तये' तथा शिक्षा का दूसरा उद्देश्य 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की प्राप्ति था। वैदिक काल में शिक्षा प्रारंभ करने और शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा समाप्त करने के लिए बहुत से संस्कारों को करना आवश्यक था। लेकिन कला का विकास न होने के कारण सारे वेद मौखिक रूप में पढ़ाये जाते थे। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही दी जाती थी। प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरु के घर पर निवास कर शिक्षा प्राप्त करता था। जिसे गुरुकुल, गुरु आश्रम, गुरु गृह की संज्ञा दी गयी थी। इस काल में गुरु शिष्य के सम्बन्ध को आध्यात्मिक कहा जा सकता है जिससे गुरु और शिष्य में एकरूपता पायी जाती थी, क्योंकि दोनों का लक्ष्य एक–केवल ज्ञान प्राप्ति था।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के उद्देश्य उच्च–कोटि के थे। शिक्षा सम्बन्धी प्राचीन भारतीयों का दृष्टिकोण मात्रा आदर्शवादी ही नहीं, अपितु अधिकांश अंशों में व्यावहारिक भी था। यह व्यक्ति को सांसारिक जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं के समाधान के लिए सर्वथा उपयुक्त बनाती थी। शिक्षा समाज–सुधार का सर्वोत्तम माध्यम थी।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में प्राचीनकाल का तीसरा चरण ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में आरम्भ हुआ। इसे बौद्ध काल के नाम से पुकारते हैं। वैदिक धर्म एवं ब्राह्मण उपनिषद् धर्म के पालन करने वालों में बहुत से अवगुण, अंधविश्वास, आडम्बर, जातीय संघर्ष आदि आ गए थे। इस कारण यह आवश्यक था कि समाज के सदस्यों को धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रति प्रबुद्ध किया जाए। इसीलिए देश में एक नए धर्म सम्प्रदाय का आरम्भ हुआ जिसे गौतम बुद्ध ने चलाया। इस धर्म के आविर्भाव, विकास एवं प्रचार के कारण भारतीय शिक्षा का भी विकास हुआ और इसे बौद्ध काल की शिक्षा प्रणाली नाम दिया। बौद्ध शिक्षण–पद्धति का आरम्भ स्वयं गौतम बुद्ध ने किया था, जिसमें सरल और सुबोद्ध जनभाषा में जीवन के तत्त्वों की चर्चा की। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का आख्यान किया गया था। बौद्ध शिक्षा पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। इस काल की शिक्षा में भी वैदिक शिक्षा के समान ही शिक्षा को आध्यात्मिक उपलब्धियों का साधन माना गया था। गौतम बुद्ध ने संसार के समस्त दुःखों का मूल कारण अविद्या व अज्ञान को ही माना। शिक्षा द्वारा सच्चा ज्ञान प्राप्त होने पर ही मनुष्य को दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। बौद्ध काल में शिक्षा का

www.ignited.in

संगठन प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक किया गया था। सुसंगठित, विशाल तथा विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र बौद्ध शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता थी। भारत के इतिहास में ऐसे शिक्षा केंद्र न तो पहले कभी थे और न बाद में कभी विकसित हो सके। इन मठों में उच्च शिक्षा प्रदान करने की कुशलता के कारण भारत के अंतर्राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठाया और कोरिया, चीन, तिब्बत और जावा जैसे दूरस्थ देशों से विद्यार्थियों को आकर्षित किया।

बौद्ध शिक्षा मठों में प्रशासन के लिए प्राचार्य, शैक्षणिक और प्रशासनिक समितियों तथा विभागाध्यक्ष की व्यवस्था आधुनिक विश्वविद्यालयों के समान ही थी। राजा तथा समाज बौद्ध बिहार का व्यय भार वहन करते थे, किन्तु आन्तरिक व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। बिहारों में शिक्षण और आवास के लिए विशाल भवन व व्यवस्थित छात्रावास थे। बौद्ध बिहारों में जनतांत्रिक व्यवस्था में विद्यार्थी को व्यक्तित्व के विकास के पूर्ण अवसर दिए जाते थे। यह व्यवस्था आज के जनतांत्रिक युग के लिए आदर्श है। बौद्ध बिहार में प्रवेश के लिए जाति–पाति, ऊँच–नीच का बन्धन न होने के कारण अवसरों की समानता के सिद्धान्त का पालन होता था। बौद्ध शिक्षा की एक विशेष उपलब्धि पुस्तकालय थे। इनमें प्रत्येक धर्म, प्रत्येक भाषा और प्रत्येक विषय की उच्चतम ज्ञान की पुस्तकें संग्रहित थीं। इनमें पुस्तकों के संरक्षण, नवीन पुस्तकों को प्राप्त करने तथा प्रतिलिपियाँ तैयार कराने की उत्तम व्यवस्था थी।

वर्तमान युग में विश्व के अनेक भागों में विचारशील चिन्तक, दार्शनिक, शिक्षाशास्त्री तथा समाजशास्त्री ने गौतम बुद्ध के संदेशों की वर्तमान संदर्भ में समीक्षा करते हुए उन्हें विज्ञान के इस नाभिकीय युग में सृष्टि के प्रत्येक वाणी के लिए विशेषकर मनुष्यों के लिए अत्यन्त आवश्यक, अनिवार्य और उपयोगी माना है। वर्तमान समस्त विश्व हिंसावाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रावाद, जातिवाद, आतंकवाद और मानव–मानव के बीच परस्पर बढ़ते वैमनस्य की स्थिति ने एक ऐसे कगार पर लाकर खड़ा किया है, जहाँ पर ऐसा लगता है कि समस्त मानव सभ्यता कहीं विलीन न हो जाये और मानव सभ्यता के विलीन होने के साथ ही जड़–चेतन प्राणी के अस्तित्व का भी खतरा उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। विश्व में शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो जो आतंकवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और क्षेत्रावाद से प्रभावित न हो। चाहे ये भारतीय उपमहाद्वीप हों, एशिया के अरब राष्ट्र हों, अथवा अमेरिका व रूस जैसे बड़े राष्ट्र भी इस वर्तमान समय में आतंकवादी हिंसा के महादानव से त्रास्त हैं।

आज मानव सिपर्फ अपने में ही खोकर रह गया है। उसे अपने स्वार्थ के आगे न तो देश की चिंता है और न ही समाज और अपने परिवार की। ऐसी स्थिति में यह मानव, मानव समाज के लिए कैसे सोच सकता है जहाँ उसका स्वार्थ ही प्रधान है। निश्चय ही ऐसी स्थितियों में कुछ ऐसे कट्टरवादी साम्प्रदायिक समूहों का संगठन बनेगा जो अपने स्वार्थ के लिए निर्दोष मानव जाति का विनाश करने में कतई सकोच नहीं करेंगे। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के विनाश पर गर्व का अनुभव करेंगे और उसे धर्मयुद्ध का नाम देंगे। इसका परिणाम क्या होगा? वे स्वयं भी नहीं जानते। क्या मानव सभ्यता जो वर्तमान में 21वीं सदी के वैज्ञानिक युग में चल रही है, इसका अन्त इस अज्ञानता रूपी हिंसा से ही हो जायेगा? ये पूरे मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर क्या होगा? इसका उत्तर पाने के लिए सभी शिक्षा शास्त्री, दार्शनिक एवं राष्ट्राध्यक्ष परेशान हैं। हिंसा का अन्त हिंसा से नहीं किया जा सकता है। यदि हिंसा का अन्त हिंसा से किया जाएगा तो कुछ भी शेष नहीं बचेगा।

आधुनिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की विकृति का मुख्य कारण यह है कि हमने साक्षरता का प्रतिशत तो बढ़ाया है, पर हम यह दावा नहीं कर सकते हैं कि हमने साक्षर समूह को सुशिक्षित किया है। शिक्षा वह है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है, उसे सामाजिक जीवन जीने की कला में पारंगत करती है, उसे स्व की परिधि से निकाल कर पर–परिधि में प्रतिष्ठित करती है। इसीलिए प्राचीन शिक्षा में शिक्षार्थी को सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, दान आदि मूल्यों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित किया जाता था। परम्परागत प्राचीन भारतीय शिक्षा में जहाँ एक ओर यह उच्च आदर्श प्रतिपादित

है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक भारतीय शिक्षा इससे पूर्णतः हो चुकी है। इसमें व्यक्तित्व एवं चरित्रा के विकास की संकल्पना दब गई है, जीवन मूल्य मर गए हैं। सदाचारी बनना, क्षमाशील बनना, दीन दुखियों के प्रति दया प्रदर्शित करना, समदर्शी बनना आदि अब भारतीय शिक्षा के लक्ष्य नहीं हैं। वर्तमान में शिक्षा का लक्ष्य भौतिकवादी बन कर रह गया है।

यह सर्वविदित है कि आधुनिक भारतीय शिक्षा का गठन ब्रिटिश काल में पाश्चात्य शिक्षा के अनुकरण पर हुआ था। इसका मूल उद्देश्य शासक वर्ग के लिए नौकर तैयार करना था। स्वतन्त्रा भारत में भी शिक्षा के माध्यम से नौकरशाही के सृजन पर विशेष बल दिया गया। 70–80 के दशकों से भारत में व्यावसायिक या रोजगारपरक शिक्षा के विचार को विशेषतः प्रचारित–प्रसारित किया गया। तात्पर्य यह है कि शिक्षा या तो नौकरी या व्यवसाय पैदा करने का साधन है। आज के बदलते हुये परिवेश में शिक्षा के मूल उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास एवं चरित्रा निर्माण पूर्णतः उपेक्षित हो गए हैं। इस शिक्षा से एक अच्छा नौकरशाह, कुशल वैज्ञानिक या सपफल व्यवसायी तो मिल सकता है, पर एक अच्छे मानव का सृजन असंभव है।

आधुनिक शिक्षा में मूल्यों का अभाव सचमुच ही चिन्ता का विषय है। मनुष्य के कला पक्ष का वैभव तो बढ़ा है पर भाव पक्ष ओझल है। ऐसी स्थिति में हमें अपने गौरवशाली भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति के उद्देश्यों एवं तत्कालीन महान सन्तों के संदेशों की तरपफ देखना होगा जिन्होंने सिपर्फ मानव जाति के कल्याण के लिए ही अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उन समस्त सन्तों एवं दार्शनिकों में वर्तमान समय में गौतम बुद्ध के विचार, उनके दर्शन, उनका शिक्षा–दर्शन ही एक मात्रा प्रकाश स्तम्भ दिखाई दे रहा है जिसके आलोक में मानव जाति के शत्राुओं का विनाश बिना किसी हिंसा के किया जा सकता है। गौतम बुद्ध की वाणी 544 ई.पू. जितनी प्रासंगिक थी उससे कहीं अधिक इसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में हो गयी है क्योंकि वर्तमान समय मानव सभ्यता के अनिश्चितता का समय प्रतीत होता है, उसकी सुरक्षा का एक मात्रा रास्ता गौतम बुद्ध की अमृतवाणी है। यदि मानव समाज गौतम द्ध की इस अमृतवाणी का एक अणु मात्रा भी अनुसरण कर ले तो वह अपनी मानव सभ्यता का उत्थान, उसकी सम्पन्नता का विकास अवश्य कर सकता है। कभी–कभी हताशा पैदा हो जाती है जो देश गौतम बुद्ध को भुला चुका है, वह पुनः उनके संदेशों का क्या कभी पालन करेगा? जिनके हाथों में सत्ता आयी या आयेगी, वे बड़े संशय के साथ उनके संदेशों को देखेंगे और उनकी शिक्षा एवं जीवन–दृष्टि सम्बन्धी विचारधारा की स्पष्टता, मानव की संशय–भ्रमित मरुस्थल में खो गयी–सी लगेगी। उन पर पुनः लौटना शायद आज के बेचैन और तनाव ग्रसित समाज के लिए असंभव ही लगता है।

विश्व सभ्यता को धर्म, संस्कृति एवं शिक्षा के क्षेत्रा में भारत ने जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है उसमें बौद्ध धर्म एवं उससे सम्बन्धित

संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है। वैदिक धर्म भारत की सीमाओं तक ही सीमित रहा जबकि बौद्ध धर्म जापान, चीन, तिब्बत, श्रीलंका, सुमात्राा, जावा आदि विभिन्न देशों में प्राचीन काल से अब तक जीवन के हर क्षेत्रा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। वैदिक शिक्षा पद्धति जहाँ वर्ग विशेष तक ही सीमित थी, बौद्ध शिक्षा पद्धति में वर्ग एवं जाति के किसी भी भेद को स्वीकार नहीं किया। महिलाओं को भी पुरुषों के समान शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया। शिक्षा को जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए गौतम बुद्ध ने वर्ग विशेष की भाषा संस्कृत का ही प्रयोग न करके पाली भाषा का प्रयोग किया। शिक्षा के इतिहास में पहली बार बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी जिसमें हजारों छात्रा एवं अध्यापक साथ–साथ रहते हुए ज्ञान के प्रचार–प्रसार में जुटे रहे।

प्राचीनकाल के अन्य धर्मोपदेशकों की तरह गौतम बुद्ध ने भी अपने धर्म का प्रचार मौखिक रूप से ही किया। उनके शिष्यों ने भी बहुत काल तक उनके उपदेशों का मौखिक ही प्रचार किया। बुद्ध के निजी उपदेशों का जो कुछ भी ज्ञान हमें आजकल प्राप्त है, वह त्रिपिटकों से ही हुआ है। कहा जाता है कि गौतम बुद्ध के वचनों और उपदेशों का संकलन उनके शिष्यों द्वरा त्रिपिटकों में ही किया गया। रोग, जरा तथा मरण के दुःखमय दृश्यों को देखकर सि(ार्थ का मन विकल हो गया था, किन्तु जब सिद्धार्थ बुद्ध हुये तो वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मानव तथा मानवेतर जीवन सभी दुःखों से परिपूर्ण है। जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, क्लेश, आकांक्षा, नैराश्य सभी आसक्ति से उत्पन्न होते हैं अतः ये सभी दुःख हैं। क्षणिक विषयों के लिए आसक्ति ही पुनर्जन्म तथा बन्धन का कारण होती है। सांसारिक सुखों को यथार्थ सुख समझना अदूरदर्शिता है। सांसारिक सुख वास्तविक नहीं हैं। वे क्षणिक होते हैं। उनके नष्ट हो जाने पर दुःख ही होता है। ऐसे सुखों के साथ बराबर चिन्ता लगी रहती है कि कहीं वे नष्ट न हो जायें। बौद्ध काल में शिक्षा का संगठन प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के रूप में

पृथक–पृथक किया जाता था। प्राथमिक शिक्षा 8 वर्ष की अवस्था से पबज्जा संस्कार के बाद प्रारम्भ होती थी और 12 वर्ष तक चलती थी। उच्च शिक्षा 20 वर्ष की अवस्था उपसम्पदा संस्कार के पश्चात् प्रारम्भ होती थी और जीवन भर चलती थी। बाद में जीवन भर का बंधन समाप्त हो गया था। बौद्ध काल में मुख्य शिक्षा संस्था बिहार होते थे। बौद्ध संघ के अंतर्गत अनेक मठ एवं बिहार होते थे। सर्वजनोपयोगी तथा अतिसरल होने के कारण बौद्ध दर्शन प्रारम्भ से ही विविध विद्वानों के अध्ययन अनुशीलन का विषय रहा है। इन विद्वानों ने बौद्ध शिक्षाओं के जिस पक्ष के विधिवत विवेचन का प्रयास किया है, वह है उसका सैद्धान्तिक–वैचारिक अथवा दार्शनिक पक्ष। उल्लेखनीय है कि इससे इतर बुद्ध वचनों का एक मुख्य पक्ष व्यावहारिक या सामाजिक पक्ष है। वस्तुतः यह वही पक्ष है जिसमें बौद्ध दर्शन अन्य दर्शनों से सर्वथा पृथक् एवं विरल है। प्रसिद्ध विचारकों एवं दार्शनिकों की कृतियों में वैचारिक या दार्शनिक पक्ष के समक्ष इस पक्ष का स्थान प्रायः नगण्य रहा है। अतः यह अनुभव किया गया है कि इस पक्ष के सम्यक् उद्घाटन की महती आवश्यकता है।

बौद्ध दर्शन बहुलांश में अपनी समकालीन परिस्थितियों का उत्पाद है। इसमें उन सामाजिक–धार्मिक समस्याओं का उत्तर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जो तत्कालीन जनमानस को आन्दोलित की हुई थी। इसमें नैतिक जीवन की अभ्युन्नति एवं चारित्रिक विकास के लिए नैतिक शिक्षाओं पर विशेष बल दिया गया है। वस्तुतः आध्यात्मिक लक्ष्य की गति के लिए बौद्ध दृष्टि में शील अथवा सदाचार प्रथम स्तम्भ है। जातिगत श्रेष्ठता के विचार पर आधारित ऊँच–नीच के सामाजिक विभेद के स्थान पर कर्मगत श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करना, बौद्ध संघ के आदर्श के द्वारा समतामूलक समाज को दृष्टि देना, तृष्णा को सकल दुःखों की जननी मानना, मानव व्यक्तित्व की बाह्य एवं आन्तरिक परिशुद्धि के द्वारा आदर्श चरित्रा का प्रतिमान उपस्थित करना, विचारों को अन्धविश्वासों से निकालकर ज्ञान एवं तर्क की कसौटी पर कसकर देखना, ज्ञान के साथ–साथ करुणा को व्यावहारिक जीवन का संबल बानाना, धार्मिक जीवन में कर्मकाण्ड, हिंसा आदि की प्रवृत्तियों का प्रबल विरोध करना, स्त्रियों को पुरुषों की भाँति समानता का स्थान देना, लोकभाषा के महत्त्व की स्वीकृति आदि अनेक ऐसे विचार हैं जिन्होंने बौद्ध दर्शन को सामाजिक जीवन की व्यवहार भूमि पर खड़ा किया है।

सृष्टि में जो कुछ भी है उसका अतीत भी होता है, वर्तमान भी एवं भविष्य थी। कोई भी घटना, संस्था, विचार, धारणा, नीति, आर्थिक–सामाजिक विशेषता, सिद्धान्त अथवा परिपाटी ऐसी नहीं जिसका अतीत न हो, जिसका इतिहास न हो। साथ ही कुछ भी ऐसा नहीं है जिसका इतिहास उसके वर्तमान एवं भविष्य से जुड़ा हो। अतः किसी भी घटना, प्रक्रिया अथवा परम्परा उसके वर्तमान एवं भविष्य से जुड़ा हो। अतः किसी भी घटना, प्रक्रिया अथवा परम्परा को भली–भाँति समझने के लिए कई बार उसके अतीत में झांककर देखना भी आवश्यक होता है। दूसरे मनुष्य की यह जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक होती है कि जो उसके अनुभव की सीमा में आता है, वह अतीत को भी जानना चाहता है। ऐसा न भी हो तो भी शैक्षिक एवं समाज शास्त्रीय प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का अतीत स्वयं में

महत्त्वपूर्ण एवं जानने योग्य होता है। वह स्वयं मानवीय जिज्ञासा उत्पन्न करता है। इसी पृष्ठभूमि में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक अनुसंधान का सूत्रापात हुआ। स्मिथ के अनुसार, फऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अतीत का सही–सही वर्णन करना होता है बीते सत्य की विद्वतापूर्ण खोज करना, अर्थात् जिज्ञासा का वह स्वरूप जिसमें शोधकर्त्ता जानना चाहता है कि अतीत में इसका रूप, इसकी स्थिति कैसी थी, क्यों और कैसे ऐसा हुआ।य मौलि के अनुसार, फऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य वर्तमान की घटनाओं को और अधिक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य प्रदान करना होता है।

प्रस्तुत शोध–कार्य को 7 अध्यायों में विभक्त कर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। प्रथम अध्याय भूमिका के अंतर्गत जहां विषय से संबंधित संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जाएगा, वहीं द्वितीय अध्याय में वैदिककालीन शिक्षा पर विस्तार से चर्चा की जाएगी। शोध–कार्य का तृतीय अध्याय बौद्ध–दर्शन से संबंधित होगा। चतुर्थ अध्याय में बौद्ध कालीन सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन किया जाएगा। पंचम अध्याय प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्धदर्शन के प्रभावों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा। षष्ठ अध्याय में वर्तमान शिक्षा में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता संबंधी पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला जाएगा। शोध कार्य का सप्तम एवं अंतिम अध्याय निष्कर्ष होगा। इस अध्याय में समूचे शोध कार्य का निष्कर्ष रूप दिया जाएगा। अंत में परिशिष्ठ के अंतर्गत संदर्भ ग्रंथ सूची, आधार ग्रंथ एवं सहायक ग्रंथों का वर्णन किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आधर ग्रंथ : अंगुत्तर निकाय : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी, संस्करण 1958, सम्पादिक रिचर्ड मोरिस और एण्डमण्ड हार्डी, पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन, 1885–1900
- कथावस्तु : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण 1961
- जातक : सम्पादिक, पफाउसबोल्ल, ट्रबनर एण्ड कं.लि., लंदन, 1877–96
- चुल्लवग्ग : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1956
- थेरगाथा : सम्पादक, एच. ओल्डेनवर्ग, पालि सोसायटी, लन्दन 1833, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959
- थेरीगाथा : सम्पादक, आर. पिशेल, पालि सोसायटी, लन्दन 1833, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959
- दीघनिकाय : सम्पादक, टी.डब्ल्यू. रीज रेविड्स और जे. इकारपेंटर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन, 1890–1911, सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण, 1958, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि, सारनाथ, 1936
- दीपवंश : सम्पादक, ओल्डेनबर्ग, लन्दन, 1879
- ध्म्मपद : सम्पादक, एस.एस. थेर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1914, अंग्रेजी अनुवाद, एपफ. मेक्समूलर, सेक्रेड कुक्स ऑपफ दी ईस्ट, जिल्द 10, ;भारतीय संस्करणद्ध दिल्ली 1965